प्रकाशक :
चौधरी राजेन्द्र शंकर
युग-मन्दिर
उन्नाव

मुद्रक :
पं० भृगुराज भार्गव,
अवध-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

प्राक्कथन

कविता की प्रेरणा अन्तर्जगत के भावों की अभिव्यञ्जना में है। जब कवि हृदय की बिखरी हुई अनुभूतियों को एक सम्यक क्रम से सजाकर बहिर्जगत के तत्वों में अनूदित करता है तब जीवन का वह रूप सामने आता है जो भौतिकता में निवास करते हुए भी उससे परे की वस्तु है। जीवन के चारों ओर एक आलोक-मण्डल जीवन से ही निकलता है, किन्तु जीवन के इतिवृत्त से भिन्न होता है। वस्तुवाद के कच्चे सूत से भावना का जो रेशमी वस्त्र तैयार होता है उसमें निखरे हुये जीवन की झलक होती है। मीरां ने अपनी परिस्थितियों के केन्द्र-विन्दु से जो भावना की परिधि खींची थी उसमें जीवन का समस्त कलुष पुण्य के उज्ज्वल आलोक से जगमगा उठा था। आँसुओं से सींची हुई उसकी प्रेमवेलि वस्तुवाद में बोई जाकर कहाँ तक फैल गई थी! संतों के समीप तक जहाँ लोक लाज का कोई अस्तित्व नहीं था।

हिन्दी कविता का अतीत जितना गौरवमय था, उतना संभवतः आधुनिक किसी भी भारतीय भाषा का नहीं। हिन्दी कविता का वर्त्तमान भी आशाप्रद है। प्रसाद, पंत और निराला की कविता में जीवन के अनेक चित्र जिस सधी हुई भाव-रेखाओं से बने हैं, उनका मूल्यांकन भविष्य की बात है। श्रीमती महादेवी वर्मा की करुणा सहस्रमुखी होकर जीवन का कोना कोना स्पर्श कर सकी है। नारी-हृदय जब कविता के क्षेत्र में पहुँचता है तो उसका स्वर शरद् ज्योत्सना में वंशी-वादन की भाँति ही मर्म-स्पर्शी होता है।

श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा काव्य-क्षेत्र में अपना व्यक्तित्व लेकर आई हैं। उनकी कविता में अतीत सुख की एक झलक है और वर्तमान दुःख के प्रति विद्रोह। उनकी कविता में अनुराग और प्यार का वह

उन्माद है जिससे जीवन-पथ कष्टप्रद न होकर एक गति—एक क्रम में परिवर्तित हो गया है। उनके मिलन में असफलता भी असफल हो जाती है। भावनाएँ एक ज्वालामुखी के अन्तराल से निकलकर आकाश मे पहुँचते-पहुँचते शीतल और स्निग्ध हो जाती हैं।

जान कीट्स की कविताओं के विषय में कहा गया है कि वे सरल (सिम्पल) और ऐन्द्रिक (सेन्सुअस) हैं। सरल इस रूप में कि उनके समझने में प्रयास की आवश्यकता नहीं है। पंक्तियां हृदय पर इस प्रकार उतर आती हैं जिस प्रकार निर्मल जल पर चमकता हुआ तारावलि का प्रतिविम्ब। और ऐन्द्रिक इस रूप मे कि उनके काव्य में सौन्दर्य जैसे प्रत्येक इन्द्रिय का विलास बन गया है। यह सौन्दर्य इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जाकर वहीं नहीं रुक जाता किन्तु वह आनन्दमय या विज्ञानमय कोष का आवरण सा बन जाता है। कविता में यही ऐंद्रिकता श्लाघ्य है। श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा की कविता इसी आदर्श को लेकर चली है। संभव है, उन्हें इस आदर्श को प्राप्त करने मे साधना का सु-दूर पथ पार करना पड़े किन्तु उनका संकेत इसी दिशा में है। भावनाओं की गहराई में भी सरलता की रक्षा करनेवाली उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ कितनी सजीव हैं—

सूनी चितवन के पथ पर ही
लगा दिया मर्मों का मेला।
हलकी श्वासों पर लिख दी है,
कितनी गहरी सुधि की वेला॥

जलती साधों के दीपक को देकर स्नेह भरा छलकाया।
श्वास-मिलन के मन्दिर मे ही विरह-चिता का साज सजाया॥

वश न हुआ क्यार तृप्ति-सिन्धु में

कहा अभावों में तिरने को,
शेष रहा अब क्या करने को।

(पृष्ठ ६-१०)

इसी प्रकार सौन्दर्य का चित्र देखिये—

कितना प्रिय है रोये दृग में
उनका सपना बनकर आना।
मेरे सोते उच्छ्वासों को
दुलरा जाना, बिखरा जाना।

मेरे सपनों के लघु जग में वे मुग्ध हँसी बनकर आयें।
इस मेरी जीवन रजनी के खो स्वप्न न पल भर में जायें॥

श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा का विषाद निखरने के पथ पर है। उसमें वेदना का तीव्र प्रवाह जैसे सत्य का समतल पाकर मन्दगामी हो गया है—

आज क्या दीपक जलाऊँ?

आज तो स्मृति एक जलती जगमगा कर तिमिर जग में।
साध के जलते चिताकण बिखरते है हृदय मग में।
शेष अब क्या है हृदय में जो निरन्तर मैं जलाऊँ।

आज क्या दीपक जलाऊँ?

अन्तिम पंक्ति में हृदय की जो विदग्धता है, वह नैराश्य के क्रोड़ में भी सजग हो उठी है। जब अनुराग की कठिन साधना अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो उसमें विराग भी अच्छा लगने लगता है:—

पर कितना मादक है प्रिय का पल भर का अज्ञात मिलन।
कितना मधुमय सुखप्रद है रे यह चिर वियोग यह अचिर मिलन।

कविता में सौन्दर्य-भावना मुकुलित हो कर सौरभ-प्रसार करने में संलग्न हो रही है। जीवन का समस्त विवेक भावना के अन्तराल में पहुँच कर उस कोमलता का निर्माण कर रहा है जहाँ पृथ्वी स्वर्ग के

समीप पहुँच जाती है। सौन्दर्य की इस भावना में ही सुमित्रा कुमारी जी की कविता की सफलता है। वे लिखती हैं :—

तेरी स्मृति-आभा से उज्ज्वल जीवन-तम-पथ दुर्गम,
रोमरोम जब प्राणों का है, तेरी सुधि का उद्गम्,
पलकों के यह शूल बिछे जब स्मृति-फूलों के पथ पर,
जब तुम ही आते जाते हो निःश्वासों के रथ पर,
तार तार में बाँध तुम्हें फिर टूट सकूँगी कैसे ?

जीवन की समस्त निराशाएं आशावाद के दृढ़ तन्तुओं से बांधकर सुमित्रा कुमारी सिनहा अपने वीतराग में जीवन को आत्मसंतुष्टि का केन्द्र बनाना चाहती हैं। यही उनकी कविता का आधारभूत तत्व है। भाषा का अभिव्यञ्जनात्मक रूप भी कविता में बड़ी स्वाभाविकता के साथ आया है। पद विन्यास अपनी चपलता में भी विकृत नहीं हो पाया। अन्तः प्रेरणा से निकलकर शब्द स्वयं सजीव हो गये हैं। श्रीमती सिनहा को अपने पहले ही काव्य संग्रह में जो सफलता मिली है वह असाधारण है। इससे उनकी प्रतिभा प्रभात में उषा की भाँति आलोकमयी हो गई है। इस प्रकार श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा की कविता अपने उज्ज्वल भविष्य की एक आकाशवाणी है।

(डा०) रामकुमार वर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०

सूची

	पृष्ठ
मिल गये तुम आज पथ पर !	१
सखि बीत गई वह सुभग रात।	४
पल भर न हुआ जीवन प्यारा।	६
खेल ज्वाला से किया है।	७
शेष रहा अब क्या करने को ?	८
कर्त्तव्य हुआ इतना कठोर !	११
वेसुध से	१२
मुझको एकाकी रहने दो !	१३
थककर	१५
मूक माँग	१७
ओ पिपासित !	१६
चाह सदा पागल क्यो होती !	२२
मेघ-गीत	२४
क्षणिक यौवन	२६
परदेशी से	२६
तुम्हें खोजती हूँ कण-कण मे।	३१
आवाहन	३३
क्यों आये ?	३५
पिक-पूजन	३७
मेरे प्यार तनिक तो बोलो !	३६
तुम से	४१
शाप	४३
वह आये थे।	४६

सूनापन ४६

भूल सकूंगी कैसे तुमको भूल सकूंगी कैसे ? . ५०

ले किसकी सुधि की साँसे . .. ५३

अब उड़से जीवन की बज़ार । ५६

परदेशी को तो जाना था । ५८

बरसात और मैं ५६

अनुभूतियाँ ६०

आज क्या दीपक जलाऊँ ? ६१

दीपमालिके ! ६२

दीप शिखा अब बुझी हुई है ! ६४

कवि का असंतोष ६५

मेरा ध्रुवतारा ६८

झूम उठता है न जाने जग इन्हें क्यो गीत कहकर? ७०

अन्तर्नाद ७२

भूलों को उस दिन प्यार किया । ७४

याद है अब तक मिला था एक दिन कुछ प्यार मुझको । ... ७६

छलिया और छलोगे कितना ? ७८

सन्देश ७६

सूने मे अब क्या गाना है ? ८१

कुसुम गान अब नहीं सुहाते ! ८३

विहाग

सुमित्रा कुमारी सिनहा

मिल गये तुम आज पथ पर !

ओ बटोही, रात बीती,
चिर-दिनों की प्यास रीती,
मिल गये तुम दर्शनों का, बह गया आलोक-निर्झर !

हर्ष-तरु के पत्र डोले,
प्राण-वंशी-रन्ध्र बोले,
मिल गये तुम शून्य में गुंजित हुये कुछ प्रेम के स्वर !

बिहाग

हृदय-मरु को सींचने को,
शूल दुख के खींचने को,
मिल गये तुम आज विस्तृत विफलता को भी विफल कर !

जग पड़ी है स्मरण-रेखा,
एक दिन जब तुम्हें देखा,
मिल गये तुम आज सहसा, फिर उसी परिचित डगर पर !

ओ बटोही मौन तोड़ो,
आज बिखरे तार जोड़ो,
दूसरे ही क्षण गिरेगा स्वप्न का संसार ढह कर !

बहुत दिन पर आज पाया,
यह मिलन क्षण क्या न लाया,
आज इस बेला बटोही, नयन को यों आर्द्र मत कर !

एक पल को यह सबेरा,
दूसरे क्षण फिर अँधेरा,
छेड़ लो वह गीत फिर हो अन्त ना जिसका कहीं पर !

करुण-स्मृतियों दूर जाओ,
रुदन का मत गीत गाओ,
आ बटोही, आज आओ, खुल मिलें हम-तुम हृदय भर !

दूर मंज़िल, तिमिरमय मग,
भग्न उर हैं पैर डगमग,
प्यार का उन्माद पा कट जायेगी यह राह सत्वर !

मिल गये तुम आज पथ पर !

सखि, बीत गई वह सुभग रात।

उस दिन ही अभी खिली थी रे,
चन्द्रिका-स्नात वह स्निग्ध रात!
कोमल तरु की कलियों से कुछ,
करता था मलयज मधुर बात।

थी कितनी द्रुत-गामिनी रात,
सखि, बीत गई हा! मधुर रात!

चंचल - सरि की नव-लहरो का,
वह मोहक नर्त्तन चपल-चपल!
तृण - लता - पुञ्ज के पत्रो का,
मर्मर-ध्वनि का रे गीत सरल!

मधु भीगी वह चाँदनी रात;
सखि बीत गई री मृदुल रात!

उस दूर विजन मे, सजनि दूर,
कोकिल का वह मधुस्नात बोल !
चातक का पी, पी, कहाँ करुण,
उन्माद बढ़ाता था अतोल !

वह उठती सुख दायिनी वात;
सखि, बीत गई वह सुभग रात !

खोले निकुञ्ज के द्वार सजन,
बिखराते थे निज श्वास-फूल !
मै अपने इन उच्छ्वासों में,
पाला करती थी हृदय - शूल !

वह छिपा प्राण का नवल गात,
सखि, बीत गई वह सुभग रात !

विहाग

पल भर न हुआ जीवन प्यारा !

पूजा के मन्दिर में झाँका,
अर्चन की चाहों को आँका,
जग ने अपराधिनि ठहराया,
आजीवन खुल न सकी कारा !
पल भर न हुआ जीवन प्यारा !

मधु के घट रक्खे दूर दूर,
जब छूना चाहा हुए चूर,
जग अन्तराल से पिला सका,
मुझको केवल विष की धारा !
पल भर न हुआ जीवन प्यारा !

खेल ज्वाला से किया है !

शून्यता जब नयन छाई, हृदय मे तृष्णा समाई,
समझ कर पीयूष मैंने
गरल ही अब तक पिया है ।

स्वप्न-उपवन मे चहक कर, पींजरे मे जा, बहक कर—
जग भला क्या जान सकता,
मूल्य मैंने क्या दिया है ?

इस अँधेरे देश मे पल, पागलो के वेश मे चल,
शून्य के ही साथ मैंने
वेदना - विनिमय किया है !

प्यार का पाकर निमन्त्रण, मै गई, कितना प्रवंचन !
समझ कर वरदान मैंने,
शाप ही अब तक लिया है !

खेल ज्वाला से किया है !

विहाग

शेष रहा अब क्या करने को ?

रजकण को पाषाण बनाया,
एक बूँद का सिन्धु रचाया।
धर जड़ पत्थर भी उर पर जब,
कर सजीव उसको तड़पाया !
पलकों की लघु सीमा में जब विस्तृत निज आकाश छिपाया,
शून्य दिगन्तों से अन्तस के एक करुण चीत्कार उठाया !
खोल दिया जब शारद-आँचल,
पावस की मावस भरने को !
शेष रहा अब क्या करने को !

बाँध दिया जब तुमने उमड़ा,
हाहाकार विकल सागर का,
मौन किया बजती कल-कल ध्वनि,
फूटा मधु - अन्तर - निर्झर का !
अग्निलोक की शीतलता को तुमने किया पुरानी संगिनि !
भरने नीली व्यथा गगन में उड़ा दिया उच्छ्वास-विहंगिनि !
अवसादो की कलियाँ भी क्या,
शेष रही यौवन भरने को ?
शेष रहा अब ! क्या करने को !

देकर अक्षय निधियाँ भी तो,
जीवन को कर दिया भिखारी,
बैठा पल-पल में, मूरत को,
सूनेपन का किया पुजारी !
मधु-स्वप्नो की सुधा पिलाकर जिला सदा को दिया हलाहल !
गीतों के सूखे वर्णों में उमड़ाये आँसू के बादल !
बचे रहे क्या दूध भरे दृग
पूनो के, काजल भरने को ?
शेष रहा अब क्या करने को ?

सूनी चितवन के पथ पर ही,
लगा दिया मर्मों का मेला !
हलकी श्वासों पर लिख दी है,
कितनी गहरी सुधि की वेला !

विहाग

जलती साधों के दीपक को देकर स्नेह भरा छलकाया,

श्वास-मिलन के मन्दिर में ही विरह चिता का साज सजाया !

क्या न डुबाकर तृप्ति-सिन्धु में,

कहा अभावों में तिरने को ?

शेष रहा अब क्या करने को ?

मंज़िल का जो छोर न दीखे,

उस पथ की ही पथी बनाया !

दूर कहीं खोई झनकारों,

को सुनने का व्रती बनाया !

पीने को दूरत्व न जाने कब से यह अपनत्व जलाया,

बन्दी अपनी कारा में कर जीवन को चिरमुक्त बसाया !

एक निमिष की झाँकी का,

अमरत्व दिया रो रो मरने को ?

शेष रहा फिर क्या करने को ?

कर्त्तव्य हुआ इतना कठोर !
क्षण भर न रुके हा ! चले गये !

चित्रित मानस-पट पर मेरे थी स्वर्गोपम वह छवि उनकी।
स्वर मधुर भरे थे श्रवणों मे, आँखो मे उत्कण्ठा छलकी।
शीतल-समीर वह बन आये, सौरभ-समीर बन चले गये।
चिर सहचरि मेरी पीड़ा को, दे आज एक माधुरी गये।

सुन्दर भावो की एक लहर, बन आये सत्वर चले गये !
घन-घटा बने क्षण भर बरसे, अरमान हमारे छले गये !
यह दृग-चातक रह गये तृषित, आलिंगन हित कर उठे रहे !
प्राणों के पंकज हो प्रफुल्ल, पल मे मुरझाकर हाय ! दहे !

बिखरा आशाओं की ढेरी,
क्षण मे आये, वह चले गये !

बेसुध से—

मानस मन्दिर मे प्रिय तुम,
निशिदिन निवास करते हो।
पर उसकी जीर्ण दशा का
कुछ ध्यान नहीं रखते हो?

इतने बेसुध हो तुम जब,
कैसे हो मुझको आशा?
तुम पूरी कभी करोगे?
मेरे मन की अभिलाषा?

एकाकी—

ऊषा, वातायन से आकर,
मत अरुण अधर से मुस्काओ,
इस उर की सोती ज्वाला को
उकसा कर, आह न धधकाओ!

मुझको एकाकी रहने दो-!

अम्बर के नीरद! उमड़ घुमड़
मत अविरल - धारा बरसाओ,
अन्तस के शत-शत घावों पर
अब नमक छिड़क मत तड़पाओ!

बस एकाकी ही रहने दो!

विहाग

शीतल समीर सौरभ लेकर
इस शून्य अजिर में मत आओ!
मेरे विषाद को दिखलाकर
उन्माद-मार्ग मत बहलाओ!

मुझको एकाकी रहने दो!

अनवरत 'कुहू' का स्वर अधीर
मत पिकी सुना कर दुख दूना,
मत कूक हूक से टीस उठा
रहने दे अन्तर - तर सूना।

बस एकाकी ही रहने दो!

थक कर

स्वप्न-पथ मे स्नेह-सम्बल ले न अब मैं चल सकूँगी।
रिक्त-दीपक-स्नेह सी तूफान मे कब बल सकूँगी।
दुःख का हिम खंड उर को कर कहाँ तक गल सकूँगी।
अब न मैं अपवाद की प्राचीर-भीतर पल सकूँगी।
उस प्रवासी के लिये मै कब तलक यह योग साधूँ।
वेदना-नद में तडपते प्राण कैसे धीर बाँधूँ।

रिक्त उर के अंश को बस याद से उनकी सजाये।
अब तलक ढो ढो प्रतीक्षा-बोझ, मैंने युग बिताये।
विश्व का आदेश ! मत इस प्रेम-पथ पर पग बढ़ाओ।
प्रेम-मधु से भीग तुम बन विसुध मत इस ओर आओ।
कल्पना के यान पर मत विकल प्राणों को उड़ाओ !
प्यार के मधु-स्वप्न की निधि यों न रो रो कर लुटाओ।
दुख-विहग पालो न, मन को नीड़ पागल मत बनाओ।
मुखर कोलाहल भरे जग को न उर अपना दिखाओ।
व्यर्थ झंझावात में पड़ अब न मनुहारें लुटाओ।
फूल होंगे शूल पग पग, भूल मत उस ओर जाओ।
भाग्य-रेखा को मिटाने में सफल होगी न आशा।
चिर-अमर-अभिशाप से वरदान की कैसी दुराशा।
दूर से ही देख लो वह टिमटिमाते भाग्य-तारे।
विश्व-गति सत्वर लगा देगी, जगत के उस किनारे।

मूक-माँग

हा ! मेरे सुख का वह लघु पल, क्यों इन्द्र धनुष सा बन आता ।
मैं निरख न जी भर भी पाती, वह मिट क्षण भर में ही जाता ।

तम-निभृत व्योम पर नीरव वह,
जो तेज-पुञ्ज सा खिल उठता ।
मैं उसे न चुम्बित कर पाती,
वह हाय मुझे कितना छलता !

पर कितना मादक है प्रिय का पल-भर का यह अज्ञात मिलन ।
कितना मधुमय सुखप्रद है रे, यह चिर-वियोग यह अचिर मिलन ।

विहाग

कितना प्रिय है रोये दृग में,
उनका सपना बनकर आना।
मेरे सोते उच्छ्वासो को,
दुलरा जाना बिखरा जाना।
मेरे सपने के लघु जग मे वे मुग्ध हँसी बनकर आयें।
यह मेरी जीवन-रजनी के खो स्वप्न न पल भर में जायें।
मानस-पट पर वह नित आवे,
पलकों पर सरसिज पग धर के।
मैं हृदय-नीड में छिपा रखूँ,
वे कुहुक उठें कलरव करके।
छाया से दूर देश से आ कुछ भूली याद दिला जायें।
क्षण भर उर में हँस बस कर वे मीठी वेदना जगा जायें!
छलकें पलकों की सीपी में—
बन कर वे सपनों के मोती!
मैं भर लूँ रीता हृदय-कोष,
उस निधि से, जो न कभी खोती।
मेरे आँचल से सपनों का, वैभव जब हो लुट जाने को।
निज चरणों की रेखा अंकित कर दें धीरज बँधवाने को।
यदि फूलों से हँसते आये,
प्राणों मे सौरभ बस जाये।
यदि मधुर राग बन वे आयें, झंकार भरी तो रह जाये!

ओ पिपासित !

ओ पिपासित क्षुद्र मानव, क्यों लगा प्रतिबन्ध तुझ पर ?
हँस न सकता यदि यहाँ तो, क्यों न रो पाता हृदय-भर !
देख, अम्बर-अंक में नित,
दुबक तारक-बाल रोतीं ।
देख, तटिनी पुलिन-उर से,
लिपट अपने घाव धोतीं ।
देख, रजनी तिमिर से मिल,
निज हृदय का भार खोती ।
देख, फूलों के हृदय की पीर,
लेकर अनिल ढोती ।
कह तुझे अवलम्ब किसका, जा लगे तू किधर बहकर ?

सजल बादल का हृदय भी,
पिघल गिरता है अवनि पर।
अचल उर को चीर बहता,
आँसुओं का मुक्त निर्झर।
रो रहे हैं काँपते से,
शुष्क पल्लव करुण 'मरमर'।
विकल बुलबुल, डालियों पर,
है रही अविरल रुदन कर।
नयन का तू कोष अक्षय, ले न पाता विश्व को भर।
ओ पिपासित क्षुद्र मानव क्यों लगा प्रतिबन्ध तुझ पर?

रात भर दीपक - शिखायें,
रुदन कर, करतीं सबेरा।
रात भर प्यासा पपीहा,
रुदन कर, लेता बसेरा।
रात रोती, आँसुओं से,
भीग उठता, भूमि-अंचल।
हहरकर रोता दिवा-निशि,
सिन्धु - सीमाहीन चंचल।
पर न पाते बरस जग में उमड़ तेरे नयन-जलधर।
ओ पिपासित क्षुद्र मानव क्यो लगा प्रतिबन्ध तुझ पर?

विश्व का कण कण सुनाता,
अमित करुणा-पूर्ण-क्रन्दन!
किन्तु तेरे मौन रोदन पर
कठिन कितना नियन्त्रण!
प्राण-वन्दी रुद्ध गायन,

मौन पलकों का प्रकम्पन।
रोकना है श्वास-तारों में,
न जागे व्यथित स्पन्दन!
बह न गल कर जायँ तेरे, विश्व में करुणा-भरे स्वर।
ओ पिपासित क्षुद्र मानव, क्यों लगा प्रतिबन्ध तुझ पर?

बाँध पाते तुम न आँसू—
डोर से भी दुःख-ज्वाला।
बोल पाता पींजरे मे भी
नहीं दुख - विहग पाला।
नयन - नौका आँसुओं मे,
तिर न जाये रोकते हो।
अश्रु - बूँदे दुख - कथायें,
लिख न जाये रोकते हो!
क्रन्दनों का ही तुम्हारे जग रहा उपहास क्यों कर?
ओ पिपासित क्षुद्र मानव क्यो लगा प्रतिबन्ध तुझ पर!

प्राण-तन-मन को दबाये,
अश्रुओं का भार मानव?
शुष्क अधरों मे घिरे क्यों,
उमड़ते उद्गार मानव?
नयन-कूलों में रुके क्यों,
प्रलय की यह धार मानव?
अश्रु का, अन्तर बना संगम,
चला क्यों पार मानव?
हाय! होना शान्त तुझको ज्वाल मे निर्धूम बुझकर!
ओ पिपासित क्षुद्र मानव, क्यों लगा प्रतिबन्ध तुझ पर!

चाह सदा पागल क्यों होती ?

धूल भरे सपनों के खँडहर—
आती जब तम-रात उतर कर,
ऊँचा महल बनाने चलती,
मिटते चिन्हों के चुन मोती।

चाह सदा पागल क्यों होती ?

अपना प्रात सदा जो भूली,
विमूर्च्छिता— जिसकी गोधूली,
खो खो कर फिर खो जाने को,
राख हुई जो आग, सँजोती !

चाह सदा पागल क्यों होती ?

तृषा सिन्धु में जो न समाई,
उसकी एक विन्दु ललचाई—
आँखें जलने वाले दीपक—
की लौ सी अविरल क्यों रोती ?

चाह सदा पागल क्यों होती ?

धुले हुये चित्रों की लाली,
खोज रही मरु में हरियाली,
अमृत-कण के लिये हलाहल
से सारा जीवन ही धोती ?

चाह सदा पागल क्यों होती ?

मेघ-गीत

याद आ रही आज मुझे सखि,
मृदु शैशव के सावन-घन की।
वह रिमझिम का राग मनोहर,
वह हरियाली वन-उपवन की।
हँस आनन्द मनाती थी सखि,
आम्र-शाख पर झूल हिंडोले।
रस की धार बहाती थीं,
वारिद - मालायें हौले हौले !

मंजु - मयूरी का नर्तन लख,
पुलक प्रेम से उर उठता था !
हाय ! पपीहों की पुकार सुन,
मन कौतुक से भर उठता था।
हृदय नाचने लग जाता था—
लख चंचल तितली का उड़ना
हरे हरे पत्ते लहराते
लख, विकसित पुष्पों का हँसना

नीलम मेघ - पटों मे चपला,
चमक चौंक कर छिप जाती थी।
हिय में सुन गम्भीर नाद—
मेघों का, हलचल मच जाती थी।
अरे, गले मिल गया कहाँ वह ?
खोल द्वार यौवन का शैशव,
आज बादलों से मिल रोता,
हृदय, लुटा प्राणों का वैभव !

क्षणिक यौवन

उस अरुण-प्रतीची में, उदास,
छिपता जो रवि हो तेज-हीन।
फिर उग्र रूप धर कर प्रभात!
युग-स्वर्ण दिखाता प्रभा पीन!

निज कला, कलाधर खो करके,
छिपते तम बीच अमावस को।
फिर रजत धवल होकर नभ में,
देते आलोक धरातल को!

नभ के ज्योतिर्मय आँगन में,
रहते विलीन जो तारागण !
रजनी के नील गगन मे फिर,
छा जाते बन वे हीरक-कण !

जिस हरित मंजु दूर्वादल को,
ग्रीषम का ताप जला देता !
नव-जीवन पाते वही पुनः,
जब वारिद जल बरसा देता !

वैभव अनन्त जब वर बसन्त,
का पतझर लेता हाय ! लूट।
तब होतीं मुखर दिशाये फिर,
उठता बरबस मधुमास फूट !

यह प्रकृति-नटी नित नव सिंगार,
करती प्रतिपल अभिनव स्वरूप !
पर एक सत्य, चिर रुचिर सतत,
ज्योतित रे यह सुषमा अनूप।

बुदबुद की भाँति किन्तु होता,
हा ! नष्ट नवल मानव-यौवन।
नश्वर - जीवन के करुण-काव्य,
है रुदन यहाँ चंचल यौवन !

यह मधुयौवन कुछ पुलक किलक,
फिर चला जरा की ओर आह !
दो दिन का मदमाता जीवन,
लेता है अन्तिम यही राह !

—

परदेशी से—

इन नयनो से ओझल होकर गए कहाँ मेरे परदेशी ?

उमड रहे नभ मे घन काले,
सन सन सन बह रहा पवन है !
चपला चमक कड़क जाती है,
फैल तमिस्रा रही सघन है !

इस भयावनी बेला मे हा ! बसे कहाँ होगे परदेशी ?

विहाग

पीड़ा के उच्छ्वास उठ रहे,
आहत मेरे अभ्यन्तर से।
प्राणों की गति रुद्ध हुई पर,
आशा-पगली लिपटी उर से।

मुझ भूली पर रखते अपना कभी ध्यान होगे परदेशी ?

मैं सूनी सन्ध्या बेला में,
दीप जला बैठी रहती हूँ।
आँखों की बरुनी से पथ के,
काँटे चुन उर में रखती हूँ।

कितने दिवस मास बीते अब कब लौटोगे हे परदेशी ?

तुम्हें खोजती हूँ कण-कण में।

द्रुम द्रुम के नूतन यौवन में,
फूलों के स्मित-पूर्ण-वदन में,

अलियों की मधु-वंशी-ध्वनि मे,
वल्लरियों के आलिंगन मे,

ओ प्रिय,वन उपवन आँगन में,
तुम्हें खोजती हूँ कण-कण में।

नीलाम्बर के दूर सदन मे,
तारों की अपलक चितवन में,

हिमकर-ज्योत्स्ना मधुर मिलन में,
वारिद के चपला-चुम्बन में,

बिहाग

ओ प्रिय, मलय-पवन सिहरन मे,
तुम्हें खोजती हूँ कण-कण मे।

लुटते ऊषा के कंचन में,
संध्या के शुचि अवगुंठन में,

सुरधनु के रंगीन सपन में,
लहरो के प्रतिपल कम्पन में,

ओ प्रिय, श्यामा के कूजन में,
तुम्हें खोजती हूँ कण-कण में।

हाय! बढ़ी आती तन मन में,
मिलन-पिपासा ज्वाल नयन में,

ज्वार उठा उर के क्रन्दन मे,
जीवन क्षण है व्याप्त मरण में,

मुझे मिले निर्वाण चरण में,
प्रिय, होने लय चिह्न-चरण में,

तुम्हें खोजती हूँ कण-कण में।

आवाहन

इस सूनी कुटिया मे आओ,
आओ, एक बार तो आओ!

नहीं इधर क्या तुम देखोगे, कर करुणा की कोर प्रवासी!
बसे हुये हो तार तार मे प्राणों के चित-चोर प्रवासी!
यह साधना सफल कर जाओ,
आओ, एक बार तो आओ!

बिहाग

स्वप्नालय मे प्रतिदिन आते, फिर हो जाते हो अन्तर्हित !
भर जाते चिर-अन्धकार क्यो, आँखो को करके आलोकित !
हाय न मुझको यों तड़पाओ,
आओ, एक बार तो आओ !

कुहू निशा के गहन तिमिर में, उज्ज्वल स्मित ही बन कर आओ !
शूलो के दंशन में अब तो, फूलो के चुम्बन दे जाओ !
इस दुखिया को आ अपनाओ,
आओ, एक बार तो आओ !

पतझर के सूखे आँगन में मधु ऋतु का वैभव बन आओ !
यह चिर-कालिक ताप दुसह है, करुणा के नव घन बरसाओ !
प्यास बुझा आँखों की जाओ !
आओ, एक बार तो आओ !

अमृत-सी बूँदे टपकाओ, जीवन मरु होवे नन्दन-वन !
नीरव कुटिया को आ दे दो, मृदु कलरव मय शुभ जीवन !
प्रियतम अब न विलम्ब लगाओ,
आओ एक बार तो आओ !

क्यों आये ?

मधु ऋतु की हँसती घड़ियाँ यह,
जीवन - पतझर में क्यों लाये ?
यह मस्ती की फुलझड़ियाँ ले,
मेरे खँडहर में क्यों आये ?

छेड़ी क्यों तुमने सूने में
वंशी-ध्वनि मीठी, क्यों आये ?
जिसको सुन पागल विकल हुआ
यह मन मेरा, तुम क्यों आये ?

विहाग

रोदन के एकाकी जग मे,
पल एक हँसाने क्यों आये!
नाता इस पीड़ा मय उर से,
तुम हाय! जोड़ने क्यों आये!

उस गीली स्मित की छवि नयनों में,
तुम उलझाने क्यों आये!
मधु का प्याला आँखों में भर,
पल पल छलकाने क्यों आये!

तुम पूर्ण अपरिचित मग चलते,
चिर परिचित बन कर क्यों आये!
हे पथी, कहो जाना ही था,
तो रुकने पल भर क्यों आये!

पिक-कूजन—

कितना मोहक, कितना मादक,
कितना अभिनव यह मधु-प्रभात।
नभ, तरु, तृण, पल्लव मे आया,
ऋतुराज आज मानों सगात।

मंगलदायिनि इस वेला मे,
ऋतुपति का प्यार उमडता है।
यौवन फूलों मे चित्रित कर
ऊषा का राग छलकता है।
कलियाँ कुंजो मे सुरभि-सनी
घूँघट-पट, खिसका, मुसका कर

बिहाग

अधरों से परिमल के मधु कण
देतीं मधुकर को लिपटा कर।
प्रिय आम्र-मञ्जरी की सुवास,
ले मलय - वात बिखराती है।

किसलय विकसित होते उन्मद—
पिक पंचम तान सुनाती है।
पर आह वही पिक-कूजन सुन,
अस्थिर हो उठता मेरा मन।
जाने क्या है इस ध्वनि में,
जो उर में भर जाता सूनापन।

जाने किस गत-स्मृति की कसकन,
अन्तस्तल में उठती मरोर।
स्वर-लहरी कम्पित मौन शून्य,
करुणा की अगणित हिलोर।

मेरे प्यार तनिक तो बोलो।

नभ के आँगन में तारापति मेघपरी से किलक रहा है।

चाँदी की रातो की बातो का रस छल छल छलक रहा है।

मन्दिर भीतर दीपक जलता, द्वार बन्द है आओ खोलो!

मेरे प्यार तनिक तो बोलो!

ओ मेरे सपनो के राजा, हिय आकाश समाये क्यों थे?

प्राणों के प्राणों को देकर, मुरझे प्राण खिलाये क्यों थे?

मेरे गीतो मे गति भरने निज स्वर की पाँखे तो खोलो।

मेरे प्यार तनिक तो बोलो!

कसक - कंटकों की टोली में स्वर के फूल खिला तो जाओ ,
कनक-रश्मि-से स्वर-सुहाग भर अंचल में बरसा तो जाओ।
पछी थक सोया है मेरा प्राणों में मधु कलरव घोलो।
मेरे प्यार तनिक तो बोलो !

छूम छनन कर नाच उठे मेरी बेहोशी यह इतराकर !
बोलो प्राण बिना बोले यह गीत चले कैसे इठलाकर !
इस तपती जगती मे बोलो, बोलो, मस्त पवन - से डोलो।
मेरे प्यार तनिक तो बोलो !

लघु पथ की पंथी मैं तो थी क्यों तुमने पद - चिन्ह बिखेरे ?
आशाओं के म्लान कुसुम कुछ बँधे हुए आँचल में मेरे—
किन्तु कठिन पथ घोर तमिस्रा, बोलो, किरणों का घर खोलो !
मेरे प्यार तनिक तो बोलो !

दीर्घ मौन का आश्रय लेकर अन्तस बीच छिपोगे कब तक ?
बिन बरसे मेघों से व्याकुल मँडराते डोलोगे कब तक ?
ओ मानी, मस्तानी तानों से दामिनि की कारा खोलो।
मेरे प्यार तनिक तो बोलो !

तुमसे—

कितना छवि-रस भर आज,
शरद पूनो की राका आयी है !
मादकता की सी तरल हँसी—
अवनी । तल पर लहराई है !

हैं सरोवरों में फूल रहे,
नव कुमुद शारदी लहर लहर !
यह मलयानिल कुछ कानों में—
कह रहा आज क्या सिहर सिहर !

ज्यों सरित - वक्ष पर रजत - रश्मि,
हों खेल रहीं चापल्य - संग !
त्यों विधुर - हृदय के कम्पन से—
हैं होड़ ले रहीं शत उमंग ।

नव - आशा का संसार जगा,
भर गई हृदय में अमिट चाह !
है आज असह यह प्रणय-पीर
बह चला आँसुओं का प्रवाह !

वसुधा पर फैला है कितना,
ज्योत्सना का यह सागर अपार !
बस, एक बार तो आज निकट—
आता ओ मेरे मधुर प्यार !

शाप

शाप दिया था तुमने उस दिन किन्तु हुआ वरदान मुझे,
दूरागत ध्वनि लगी लहरती मादक पंचम तान मुझे।

व्यथा - पुजारिन उर - मन्दिर की,
मधु से नहा उठी ध्वनि सुन—
पीड़ा के नूपुर निःस्वर थे,
मुखर बज उठे रुनुन झुनुन !

हुये प्रज्वलित दृग के दीपक लेकर स्नेह छलकता सा,
पीकर स्वर के विन्दु प्यार का पारावार उमड़ता सा।

फूल प्रणों के खिल खिल झरते—
मृदु रस - भीने गंध - विकल।
रोम रोम से अंग जल उठे,
धूप वर्ति से हो झल झल!

रक्त हृदय का शीतल चन्दन लेपन ले युग कर कम्पित,
पूजा का नव साज सजाकर चले प्राण छवि सम्मोहित!

मृदु पग का प्रक्षालन करने,
पलकों की गंगा का जल।
तिर तिर जिसमें नाच रहा है,
प्राण तुम्हारा ही शत दल।

मनुहारों की नव पंखुड़ियाँ एक एक कर झुक झुक कर,
करने लगीं अर्चना वन्दन श्वास पुलक कर रुक रुक कर।

जय की मधु वेला में मादक—
फूट पड़ा अधरों से स्वर।
अन्तरिक्ष से आती प्रतिध्वनि—
झूम झूम उठता अंबर।

कंठ गमक सुन मधुर मुग्ध हो उठे झंकरित उन्मन क्षण,
शून्य विजन मे मेरे गूँजी वर ले, शापो की प्रतिध्वनि।

पुतली की काली अलकों में—
छिपा तुम्हारा चन्द्र - वदन।
खेल उठी मैं आँख मिचौनी—
हुआ ज्योत्स्नामय जगवन!

कभी निमिष भर तो ही देना तुम मंगलमय शाप सजन,
स्वर के स्रोत तरंगित कर देंगे रीते जीवन-क्षण-क्षण।

हाय! कभी वाणी-वीणा-झनकारों
की प्रतिध्वनि बोले।
चिर वसन्त सौरभ बरसाता,
छूकर मलय - पवन डोले।

पल भर को ही बह जाये उस मुक्त कंठ का मधु - निर्झर,
मेरा सिकता तट छू ले बस, कण-कण को करता उर्वर।

युग युग का वरदान मिले,
तुम दो तो शाप किसी भी क्षण।
मेरे दूर देश के वासी,
पाने का क्षण हो जीवन।

बिहाग

वह आये थे

वह आये, फूलों ने साँसों से सौरभ था बिखराया।
वह आये, चाँदी से किरणों ने उनका पथ लिपवाया!

पगध्वनि से सपनों की जगती की नीरवता छलक उठी।
गति-रव से उनकी, जीवन की मृदु कोमलता झलक उठी।

सुन उनकी पदचाप विकलता उमड़ कूल को चीर चली।
दरश-वृत्तियाँ संयम - गढ़ से होकर हाय अधीर चलीं।

गति रव से अतीत की बन्दी-स्मृतियाँ झन झन झनक उठीं।
गोपन - चाहें दरश-परस से अँगड़ाई ले खनक उठीं।

वह आये प्रति पद - निक्षेपों से उर के व्रण सहलाने !
वह आये आकुल उर को व्याकुलता से फिर बहलाने ।

स्वप्नों से रञ्जित पलकों को पावस जल से नहलाने !
वह आये पल भर को, जा-युग-युग को अपना कहलाने ।

सुनते ही पगध्वनि उनकी बज उठी रागिनी उर-कम्पन ।
धोने को पद तल उनका यमुना बन गये नयन जलकण ।

छूकर उनकी श्वास, समीरण मदिरा गगरी ढार गया ।
उनकी पद चापों से पुलकित हो चन्द्रामृत वार गया ।

कुछ कहने, ले अलस पलक से दौड़े, भाषा सजल, नयन ।
उर अन्तर में तरल हृदय ले चला बिछाने नव धड़कन ।

ले परसन के सुरभि-झकोरे विकल निमन्त्रण सा आया ।
मीठी साधों ने आकर्षण का न नियन्त्रण कर पाया ।

द्वय चरणों के चिह्न-किरण ने ज्योति पुंज सा झलकाया ।
पग गति ने मंजुल गीतों का रस घट का घट छलकाया ।

दृष्टि - स्पर्श की वह कोमल अनुभूति भुलाऊँ मैं कैसे ?
सुर-धनु रंजित छवि उर-अंकित कहो मिटाऊँ मैं कैसे ?

व्यथा-लोक है नश्वर चिह्नों की शाश्वत स्मृति से जगमग ।
चरणांकन के बिन्दु बिन्दु से सिन्धु बन गये हैं ये दृग ।

दूर क्षितिज के तिमिर-भाल पर चमके बन राका के घन ।
आये थे पल भर को फिर भी छाया दारुण-निर्वासन !

गये विकम्पित-दृष्टि तमिस्त्रा पथ से कैसे हट जाये ।
लुटते रज के पद-अंकन दृग-नभ से कैसे मिट जाये ।

उस क्षण की – जो युग सम था उन नयनों की नीरव बोली,
भरी आज तक, बनी खड़ी मन में उद्‌गारों की टोली ।

बिहाग

उन नयनों के प्रश्नोत्तर की उठती है प्रतिध्वनि मन मे।
एक एक गीतो के स्वर, लय, छन्दों के प्रति बन्धन में।
उस लघु क्षण के दर्पण में प्रिय-मिलन असीमित देखा है
जिसकी छवि की ज्योति क्षितिज पर बनी किरण की रेखा है!

सूनापन

प्राण ! अब केवल सूनापन !

नहीं वह आशा का मधुमास, खिलाता नव उमंग के फूल !
कल्पना के मधुवन में आज, शेष रह गये व्यथा के शूल !
थिरकता नहीं उल्लसित मन !

प्राण ! अब केवल सूनापन !

नयन-पट पर स्वप्नों का नृत्य, नहीं रे केवल आँसू-भार।
मिलन-घडियों की आकुल प्यास न बढ पाती है अब इस पार !
याद अब केवल बीते दिन !

प्राण ! अब केवल सूनापन !

हो गये रीते आज उदार बरस कर उल्लासों के घन !
नहीं अब कोई बेसुध राग जगाता अन्तर में सिहरन !
उठी है एक नई तड़पन !

प्राण ! अब केवल सूनापन !

बिहाग

भूल सकूँगी कैसे तुमको भूल सकूँगी कैसे !

चन्द्र भूल कब सकी चकोरी, चातकि पी पी भूली ?
कब शशि ज्योत्स्ना को भूला, कब तट को तटनी भूली ?
कब ऋतुपति को भूल सकी पिक, अनिल पुष्प पाटल को,
भूल सका कब दीप शिखा को, शलभ अली शतदल को,
जीवन-बन्दी-स्मृति-बन्धन से मुक्त करूँ मैं कैसे ?

दूर रहोगे छाँह तुम्हारी यह पथ में डोलेगी,
निद्रा की रसाल - डाली, पिक सपनो की बोलेगी,
चन्द्र तुम्हारी किरण - श्वास से कुमुदिनि विहँस उठेगी,
लघु उर में पुलकित रत्नाकर की नव लहर उठेगी !
दूरी कैसी जब हम तुम हैं, काया छाया जैसे !

जब कि तुम्हारे स्मृति - आँगन मे श्वास-तार यह भूले,
स्वप्न-स्पर्श पा प्राणो के छाले फूलो से फूले,
चित्रित मेरे अणु अणु में जब हुई तुम्हारी छाया।
यह प्रवंचना फिर क्यों ? जब खो निज को तुमको पाया।
प्राण-मुकुर प्रतिबिम्ब बिना कब शून्य रहेगा कैसे ?

यहाँ एक क्षण हँसना ही है जीवन भर को रोना,
यहाँ एक पल के अमृत का विषमय कोना कोना,
किन्तु फूल का दूर कहाँ अस्तित्व यहाँ शूलों से,
हैं प्रकाश के अलक भीगते रहते तम - कूलो से,
मुक्त-हृदय से बन्धन का अभिमान मिटाऊँ कैसे ?

जली जहाँ पहिचान, न बुझती नयन - सिंधु के जल से,
मिले जहाँ युग - हृदय पलक में, पलते सुधि के पल से,
उस स्मित में पलको की प्याली धोई थी बस पल भर,
तरुण अरुणिमा मधुबन की जीवन में बिखरी गलकर,
जिस पथ बद्ध हो गये हैं पद, खींच सकूँगी कैसे ?

तेरी स्मृति-आभा से उज्ज्वल जीवन - तम - पथ दुर्गम,
रोम-रोम जब प्राणों का है, तेरी सुधि का उद्गम,

बिहाग

पलकों के यह शूल बिछे जब स्मृति-फूलों के पथ पर,
जब तुम ही आते जाते हो निःश्वासों के रथ पर,
तार तार में बाँध तुम्हें फिर टूट सकूँगी कैसे ?

जीवन की चिर तृप्ति शून्य है यहाँ सजग तृष्णा बिन,
परिमल सिंचा प्रदेश वनों का शून्य मधुप वीणा बिन,
मिला न आग भरा चुम्बन जिसको ज्वाला आलिंगन,
काली निशि में हो न सका जिसके दिन का उन्मीलन,
व्यर्थ प्रकृति की शाश्वत गति में बह रुक जाऊँ कैसे ?

बुझ तम में तो दुख ही दुख, सुख उज्ज्वल जल कर पल भर,
क्यों न निमिष भर नहा ज्वाल, लें भर प्रकाश से अन्तर,
क्यों न लिपट तम-अंचल में, विद्युत सा जल जल खेलें ?
क्यों न विश्व से जलने का, वरदान सहज में ले लें ?
जग के विष को दो पल मधु से सिक्त करूँ ना कैसे ?
भूल सकूँगी कैसे ?

ले किसकी सुधि की साँसे,
जी फिर से उठी समीरण ?
किंशुक के वन मे मचला,
किसका सोने-सा यौवन !?

फिर कलियो मे मुस्काईं,
यह किसकी पलके उन्मन ?
फिर भ्रमर-भीर मँडराई,
किसकी अलकावलियाँ बन ?

वल्लरियो की बॉहो में,
यह किसका फूलो सा तन ?
नीले कमलों की आँखो—
में किसके मन का बन्धन ?

किसके पद की लाली ले,
हँस पड़ा गुलाबों का मन ?
अग जग ज्योतिर्मय करने,
आये किसके दर्शन-क्षण ?

किस स्वर का भार लिये फिर,
कूकी रसाल पर कोयल ?
फूटा मंजरियों मे फिर,
किन रोमो का मधु-परिमल ?

यह किसकी मिलन-घड़ी की,
फिर गूँज उठी शहनाई ?
किन चिह्नों पर लुटने को,
तृण तृण हरियाली छाई ?

फिर परस-पवन के झोके,
उन्माद - हिंडोले डोले ?
सोये सपनो की किरणों,
के तार तार फिर बोले ?

फिर किसका दीप सजाकर,
शशि राह दिखाने आया!
तृष्णा को कौन पिपासा
ने जी भर फिर नहलाया!

विहाग

अब उड़से जीवन की बज़ार।

जब बीता शैशव का दुलार,
जब बीता यौवन का विहार।
बीता वैभव का जग अपार।
बीता अभिलाषा का खुमार।
अब बीती रे पतझर बहार।
तब बीती जीवन की बहार।

बीता मधु-सपनों का उभार।
बीती रस की रे पुलक धार।
बीती मद - भीनी सी बयार।
सब बीत गया रे तम पसार।
अब रह न गया कोई अधार,
उड़से फिर जीवन की बज़ार।

आशाओं का कर उपसंहार,
मन की लौलय को बना क्षार,
पीड़ाओं से करना सिंगार,
आँसू का उठना हाय ! ज्वार ।
बस मिला यही उपहार प्यार,
बीती द्रुत जीवन की बज़ार ।

इस सूनेपन का कहाँ पार ?
यह जग असार रे जग असार ।
किससे करना है रे दुलार ।
घिरता आता है अंधकार ।
है यहाँ जीत में मिली हार !
उड़सी अब जीवन की बज़ार !

किसको दिखलाना व्यथा-भार,
प्यासे जीवन के छिन्न-तार ।
प्राणों की सुनकर दुख-पुकार,
जग ठुकराने को है उदार ।
सब बीत गया जैसे तुषार,
उड़से जग-जीवन की बज़ार ।

परदेशी को तो जाना था !

जगा नींद का सोया कलरव,
फहरा सौरभ का अंचल नव,
खिली किरण के अरुण-हास-सा, सांध्य-गोद में मुरझाना था !
परदेशी को तो जाना था !

अपनी रातें वार रात पर,
शलभ प्राण में भस्म-सात भर,
जगमग दीपों सा उज्ज्वल जग में ही बुझकर सो जाना था !
परदेशी को तो जाना था !

पल को, युग युग का परिचय दे,
खोकर जीत, हार संचय ले,
पथ अज्ञात, दूर मंज़िल तक परदेशी को तो जाना था !
परदेशी को तो जाना था !

बरसात और मैं

आ गई बरसात फिर यह क्षितिज पर छाये सघन घन।
आज खुल खिल गा रहीं नभ-बूँद रिमझिम राग उन्मन।
दे रही सन्देश जगती को,
लुटा दो दिन उमंगे।
आज हरियाली बिछी है,
दो उठा उरकी तरंगें।
क्यों उठे फिर भी सजल-घन वेदना के पलक में घिर ?
क्यों रहे आख्यान उर के आँसुओं के ज्वार में तिर ?

क्यों बहे, ठंडी उसाँसे भार पीड़ा का उठा कर ?
झूलती दुख-दोल सावन में व्यथा का राग गाकर ?
हा ! मुझे अभिशाप ज्वाला-
का मिला औ अश्रु-विनिमय !
आज रे काली अमा में,
कौन दे शीश-हास मधुमय।
जानती हूँ जगत में जीवन-अरुणिमा है घड़ी भर।
खींच दी है पर नियति ने रेख काली सित लडी पर।

विहाग

अनुभूतियाँ

मोहनी सी डालती वह झूमती मधु-भार सी रे।
आ रही नव-ज्योति सी उन्माद का ले ज्वार सी रे।

हा ! न जाने दूर से किस दूर से वे आ रहीं हैं।
चिर-विकल अनुभूतियाँ हल चल मचाने आ रहीं हैं।

प्राण में जा बैठने, हिय की व्यथा हिय से बताने।
दृग-पलक-दल मे मचल-चल-जलमयी बरसात लाने।

खोलती उर-द्वार धीरे वे चली ही आ रहीं हैं।
मदिर एक मरोर से बेसुध बनाने आ रहीं हैं।

डूबती निःसीम मे अनुभूतियाँ निःस्तत्व सी यों।
चमक कर सौदामिनी हो मग्न नभ के अंक मे ज्यों।

आज क्या दीपक जलाऊँ ?

प्यार-दीपक-रिक्त उर में कौन सा आलोक लाऊँ ?
एक चिर दिन की भयंकर ज्वाल धू धू जल रही है।
खेल जिससे कुटिल जगती राह अपनी चल रही है।
गहन तम की रजनि मे मै आज ज्वाला से नहाऊँ।
आज क्या दीपक जलाऊँ ?

आज तो स्मृति एक जलती जगमगा कर तिमिर-जग में—
साध के जलते चिता-कण बिखरते हैं हृदय मग में।
शेष अब क्या है हृदय में जो निरन्तर मैं जलाऊँ ?
आज क्या दीपक जलाऊँ ?

है यही पर्याप्त दुख के दीप जीवन भर जलाकर—
नियति ने अंकित किये जो, पद चलूँ वह करुण अक्षर।
तिमिर जग मे, तिमिर उर में, तिमिर से जीवन सजाऊँ ?
आज क्या दीपक जलाऊँ ?

तिमिर मे ही छिप सकेंगे दाग़ उर के झिलमिलाते।
विश्व का उन्माद लेकर झूम उठते प्राण गाते।
खोज में उस दूर की, पग प्रलय-पथ मे मैं बढाऊँ ?
आज क्या दीपक जलाऊँ ?

बिहाग

दीप मालिके !

दीप मालिके ! लेकर किन दीपों की माला आई हो ?
अमानिशा के अंचल मे जग मग सा क्या भर लाई हो ?
तिमिर-पाश से छुड़ा जगत को ज्योति स्नान कराओगी ?
कनक-दीप के फूलो से श्यामा को आज सजाओगी ?

जग मग करते से जग-मग में कैसा मधु-उल्लास जगा।
नीलम के नीले नभ पट पर हँसता स्वर्ण प्रकाश जगा।
किन्तु विश्व ने जिसको कुचला वह न प्राण का हास जगा।
नहीं तमोमय हृदय-जगत का तारक-मय आकाश जगा।

अलियो की है प्यास जगी, कलियों का यौवन भार जगा।
विहगावलि का गान जगा, दीपावलि का संसार जगा।
भूपर तारावलि जागी, विद्युत का घन से प्यार जगा।
किन्तु अंधेरे उर निलयों मे नही ज्योति संचार जगा।

आज सजनि तिमिरावृत्त उर को दीप दानकर जाओ तो।
दीपक हीन पथो मे आकर दीपक राग सुनाओ तो।
मूर्त्तिमान आलोक जगाओ ज्योतिकिरण बिखराओ तो।
सूखे अंधकार-मय जग मे ज्योतिर्मधु बरसाओ तो।

विहाग

दीप शिखा अब बुझी हुई है !

कितने सपनों को पी करके,
आँसू के अमृत-सर भर के,
जीवित थी अब तक, पर जलने—
की आशा अब छुई मुई है !
दीप शिखा अब बुझी हुई है !

खिली धूप सी लौ तो सोई,
धूम - रेख - छाया भी खोई,
नीलम के महलों पर उड़ती,
चिह्नों की कुछ शेष रुई है !
दीप शिखा अब बुझी हुई है !

कवि का असन्तोष

जीवन के पहले ही व्यथा से रो रोकर हँसना सीखा,
नन्हें से उरके बदले जीवन भर मर मिटना सीखा।
अरमानों की डगमग गति से अनुदिन बस चलना सीखा,
मदिर सुरभि से सने प्यार के सपनो से छलना सीखा।

उर घावों की पीड़ा मे ढो ढो भर पाहन भार लिये,
जीवन में लांछना भरे अपमानो का उपहार लिये,
चिर दिन मन में प्यास, नयन में अविरल जल की धार लिये,
चलते जाना मुरझाते अरमानों का संसार लिये!

विहाग

पाया क्या जग से क्षण भर को हँसने का वरदान कभी ?
पाया क्या अपने दुख के सपनों का भी अभिमान कभी ?
पाया क्या मर मिटकर भी समवेदन या सम्मान कभी ?
पाया क्या सरिता की लहरों सा मृदु कल कल गान कभी ?

कौन सका लख, कैसी कंटक राजि खड़ी किसके मग में ?
कौन सका लख, रोते कितने छाले फूट किसी पग में ?
कौन सका लख, आग लगी कैसी किसके उजड़े जग में ?
कौन सका लख, रत्नाकर हैं खेल रहे कितने दृग में ?

कब मुरझाकर गिर पड़ने को किसी चरण की धूल मिली ?
कब किस उर के प्यार भरे संकेतों की मृदु भूल मिली ?
कब डगमग नौका को जग-सागर में दिशि अनुकूल मिली ?
कब आशा-परियों की सुर-धनु-रंजित-चारु दुकूल मिली ?

विश्व कारागार में मै प्रेम की अपराधिनी हूँ।
सजग तृष्णा की सजल परितृप्ति की अभिमानिनी हूँ।

सो गया कलरव उषा का बस तिमिर से आज नाता,
भग्न आशा खँडहरों में चिर प्रतीक्षा अश्रु-स्नाता।
कलपते चिर स्वप्न-पलकों से छलककर बह चले हैं,
उर क्षितिज के शून्य से रोती कथाये कह चले हैं।

स्मृति-सुरभि से सिक्त-पथ की अनवरत अनुगामिनी हूँ।
प्रज्वलित दीपक-शिखा सी जलन की अभिशापिनी हूँ।

रुदन कर है सुप्त करुणा उपहसित-आघात पाकर,
पतन हँसता आज अभ्युत्थान जीवन का जलाकर।
गूँथती हूँ प्राण वंशी में किसी अस्पष्ट के स्वर,
घुल गया जो नींद मे औ, जागरण के जो अगोचर।

मिट गया जो राख बन उस स्नेह की सन्यासिनी हूँ।
मिलन की साधें बुझीं मैं विरह की उन्मादिनी हूँ।

विहाग

मेरा ध्रुव तारा !

अरुणांचल से तेजोमय रवि,
सुख साज सजाते आते हैं।
नव - कनक - रश्मि - धाराओ से,
जगती का तिमिर बहाते हैं

नव नील-गगन से निशानाथ,
कौमुदी - सुधा का कर सिंचन
वर कलित - कुमुदिनी - बाला को,
विकसाते हैं देकर जीवन।

कामिनी यामिनी ने गूँथी,
हिमकण चुन चुन मुक्ता माला,
फिर भोर उषा की वेला में,
प्रिय तरु - उर में उसको डाला।

शीतल सौरभ - मय मलय वात,
पग पग इठलाती आती है।
हुलसित कर हृदय, प्राण पुलकित,
तन से लिपटा लहराती हैं!

वारिद - मालाये उमड़ घुमड़,
हरतीं जगती की तीव्र - तपन।
वन - उपवन, सरि पर्वत - श्रेणी—
को देती हैं स्वर्णिम जीवन

मृदु बल्लरियो पर पल भर को,
हैं सुमन साध से खिल उठते
सौन्दर्य - सुरभि से पथिकों का,
मधु से मधुपो का मन हरते!

पुलकित पिक मनहर - पंचम में,
गाकर मधुकण बरसाती है।
मृदु तान मनोहर दिशि दिशि मे,
भर कर मादकता लाती है।

सुन्दर शरीर धीरे धीरे,
निशि मे नित दीप जलाता है,
जगती को चिर - आलोक दान,
मिटते मिटते दे जाता है।

यह जीवन - पथ है रुद्ध शिथिल,
धीरे बहती जीवन - धारा।
चिर निरुद्देश्य, चिर ज्वलन शील,
धूमिल मेरा वह ध्रुवतारा!

झूम उठता है न जाने जग इन्हें क्यो गीत कहकर
आ गया जो आज बाहर दुख पलक से कुछ छलक कर
यह व्यथा के बूँद हैं जिनसे भरा यह छन्द सागर
ले ज्वलन की तारिका यह जगमगाता छन्द अम्बर

इन दुखों के रज कणों से छन्द की वसुधा विनिर्मित,
देख सकता जग ? सिसकता हृदय धीमे स्वर विसर्जित,
मुक्त छन्दों मे कहे मत जग, बही यह भाव-धारा,
जानता क्या ? कौन बन्दी, यह कहाँ की लौह कारा,

भग्न उरकी भ्रान्त पीड़ा के पड़े कुछ नयन-कण झर।
यह दुखों की सरित, अन्तर थिरकता जिसकी लहर पर।
वर्ण-तरु की डाल पर वह नीड़ छन्दों के बसाकर,
समझ पाता जग ? कुहुकता हृदय फूलो को हँसाकर

सजल अन्तस्तल उमड़ छल छल बहा प्रति छन्द गीला,
हास की यह फुलझड़ी क्यो जग ? हमारा बन कटीला।
स्वप्न-दीपक के बुझे दृग के गरम उच्छ्वास हैं यह।
भाप लगती क्यों न जग ? संतप्त के निश्वास है यह।

विकल वाणी विवश यौवन हार की कहती कहानी
झूम उठता मस्त हो क्यों ओ तरुण जग, आत्म-ध्यानी
अरुण-पाटल-अधर में जो गीत का मधु भर रहे जग
मधु न, मेरी वेदना के मधुप वह मंडरा रहे जग !

आह गूँजी, हृदय फूटा, भार पीडा का बिखरता।
तिमिर- अलको से गुँथा रह रूप इसका है निखरता।
ओ जगत, उत्सुक, कुतूहल से न परिचय पूछ मेरा,
इस अंधेरे देश में उजवल न कोई वेश मेरा।

परिधि मेरे शूल वन की माप मत इन अक्षरों से,
तोल क्या विषमय हृदय की विश्व के रसमय स्वरो से,
सांत्वना मिलती हमें इस नरक-ज्वाला में न पल भर,
झूम उठता फिर न जाने जग इन्हे क्यों गीत कहकर !

बिहाग

अन्तर्नाद

आज रो रोकर सुनाऊँगी व्यथा की मैं कहानी
तर्क की निष्ठुर हँसी हँस ले भले ही विश्व ज्ञानी !
प्यार के आधार पर ठहरा हुआ संसार है यह।
क्यों न मोजों में बहूँ जब प्रेम की रस-धार है यह।
प्रेम-अन्तर में मधुरिमा भर बनाता सफल जीवन,
प्रेम दीवानी धरा पर क्यों न डोले पुलक उन्मन।
ज्ञानियों का ज्ञान केवल दम्भ है इन बन्धनों में
प्रेम के संघर्ष की ज्वाला जली कितने मनों में।
तरुण हृदयों में प्रणय के अरुण मधु प्याले छलकते
चिर जरा जर्जरित नीरस जन उसे क्या जान सकते ?
है युगों से चली आई औ, चलेगी यह कहानी
प्यार, अंचल पर ढुलकता बन दृगों का तप्त पानी

आ रहा जब तक यहाँ यौवन उठा तूफ़ान जाने।
तब तलक चलते रहेंगे चिर सृजन लय के तराने।
जब प्रकृति तक पुलक उठती दुसह यौवन भार लेकर,
दो घड़ी यह क्षुद्र मानव क्यों न हँस ले प्यार लेकर।
देखकर अपने चतुर्दिक मधुर मद का साज नित नव
नाच उठती है रगों में स्नेह-धारा सुन मृदुल रव।
रात के नीरव क्षणों में इन्दु का नभ-दीप जलता।
मुस्कुराती चाँदनी के वक्ष का आँचल फिसलता।
तारिकायें झिलमिलाकर लाज दिखलातीं रहेंगी।
घन घटायें उमड़कर जब तक प्रलय ढाती रहेगी।
फूल उर का द्वार खोले, लूटते मधु अलि रहेंगे।
वल्लरी के कान मे पादप दिवाने कुछ कहेंगे।
प्यार का संसार स्वर्णिम चिर अमर तब तक रहेगा।
पुरुष का मोदक प्रकृति का मेल यह जब तक रहेगा।
प्रकृति के शाश्वत नियम का यह अनादर व्यर्थ मानव
चार दिन हँस खेल लें पथ मे भले हो प्रलय का रव।

विहाग

भूलों को उस दिन प्यार किया !

आंखों ने रात चुराई जब,

अधरों में सुधा नहाई जब

सपनों के छोटे जीवन पर

यह जीवन ही जब वार दिया !

भूलों को उस दिन प्यार किया !

आह्वान बना अन्तस्तल था,

अन्वेषण आहों का दल था,

विस्मृति ने स्मृति का आलिंगन

कर हारों का उपहार लिया !

भूलों को उस दिन प्यार किया !

सोने का करने धूल राज,
गीतों का करने मूक साज,
बूँदों में भरने को अनन्त,
बूँदों का पारावार पिया !
भूलों को उस दिन प्यार किया !

बिहाग

याद है अब तक, मिला था एक दिन कुछ प्यार मुझको।

एक दिन चिर तृषित मरु में प्यार—सुरभित पवन डोला,
एक दिन प्रति श्वास में मृदु—प्यार हो साकार बोला,
एक दिन ही प्राण में मधु-प्यार सुरसिर धार उमडी—
एक दिन बस हृदय मन्दिर का किसी ने द्वार खोला!

प्रथम क्षण का अथ हुआ अब करुण उपसंहार मुझको,
याद है अब तक मिला था एक दिन कुछ प्यार मुझको!

तब अमा के अक मे सुख पूर्णिमा का हास छाया।
एक पल को शून्यता के बीच मृदु मधु मास आया।
कर चुकी हूँ भेंट उसकी सजल सुधि मे मधुर जीवन,
और बदले मे गगन सा दुःख का वरदान पाया!

आज करना है विजनता से प्रणय-अभिसार मुझको।
याद है अब तक मिला था एक दिन कुछ प्यार मुझको।

प्रेम वंचित पलक मे अब अश्रु-पारावार सोता,
मौन जीवन के क्षणों से लिपट हाहाकार रोता।
तरल सुधि का गुप्त धन हूँ बीच प्राणों के समेटे,
अब शरद के स्वर्ण-धन सा प्राण का आधार खोता।
आज तो अणु अणु हुआ है कठिन कारागार मुझको।
याद है अब तक मिला था एक दिन कुछ प्यार मुझको।

वेदना के विपिन मे अब विचरती पीड़ा सँभाले,
एक पल की जीत की हँसती हृदय मे हार डाले।
क्यों सुनाती ताल दे दे गीत पाटल-माल मुझको,
सींच कर नैराश्य से अब टूटते से स्वप्न पाले।
चिर-विरह पतझार में कंटक हुये हिय हार मुझको।
याद है अब तक मिला था एक दिन कुछ प्यार मुझको।

स्वप्न-स्मृतियों के अकेले पृष्ठ मे जगती कथायें,
लुप्त चेतन शक्ति है पर सजग उठती चिर व्यथायें।
उमड़ते हैं बादलों से कुछ हृदय-उद्गार मेरे,
अश्रुओं की बाढ़ में अब सिसकती हैं कामनायें।
विश्व-तन्द्रिल जागने का पर मिला उपहार मुझको।
याद है अब तक मिला था एक दिन कुछ प्यार मुझको।

विहाग

छलिया ! और छलोगे कितना ?

भरा हुआ क्या छलकाना है ?
आज न अब भी क्या जाना है ?
रिक्त हुआ पूर्णत्व आह ! उस प्राप्ति हृदय पर कितना कितना ?
छलिया ! और छलोगे कितना ?
आज साँझ मे शेष रहा क्या ?
ऊषा का वह स्वर्ण-वेष क्या ?
लुटा चुकी हूँ पथ में वह सब पाया था जो कुछ भी जितना ?
छलिया ! और छलोगे कितना ?
दूर क्षितिज में क्यों मुस्काते ?
हाय ! न आकर फिर क्यों आते ?
क्या पथ को श्वासों ने शीतल कर पाया है केवल इतना ?
छलिया ? और छलोगे कितना ?

सन्देश

मनोहर हे गुलाब के फूल !

मेरे प्रियतम के समान तुम ले अभिनव

स्वर्गिक शृंगार !

आये हो सुकुमार यहाँ पर विक्रय करने निज मधु-भार !

पल भर के अपने जीवन में, लुटा मरन्द सुरभि-उपहार।

करते तृप्त मधुकरी को तुम अर्पित कर यौवन-संसार।

मनोहर हे गुलाब के फूल !

पर सुषमामय मेरे प्रिय का मुँदा हुआ है,

मानस-द्वार !

जिसे न मुखरित कर पाती है मेरी मर्म-मधुर-गुंजार।
जीवन है दो चार क्षणों का कह तो दो प्रिय से सन्देश।
वही प्रेम-सरिता भर जायें वे मेरा मरु-हृदय-प्रदेश।

मनोहर हे गुलाब के फूल!
किया हृदय-धन जिसे समर्पित, क्या न कभी
खोलेगा द्वार!

माँगूँ आज भिखारिन-सी मैं उनका किंचित मधुमय प्यार!

सूने मे अब क्या गाना है ?

सरिता तट की नीरवता मे,
पाटल-कुंजों की शुचिता में,
चारु चितेरा बनकर कब तक किरणों की छवि भर लाना है ?
सूने में अब क्या गाना है

सुलग रहा संसार किसी का,
धधक रहा शृंगार किसी का,
आज कौन से मधु-उत्सव के मंगल-कलश सजा आना है ?
सूने मे अब क्या गाना है ?

बालू है अंगार उगलती,
कंकालों की भूख उबलती,
किन मीठे कल्पना-घनो से रस की धार बहा जाना है,
सूने मे अब क्या गाना है !
युग-वाणी से कंठ मिलाकर,
चल विष पी औ' सुधा पिलाकर,
स्वागत करले जग पग पग पर ऐसी राह बना जाना है।
सूने मे अब क्या गाना है।

कुसुम गान अब नहीं सुहाते !

कैसी नन्दन की पद-लाली,
नक्षत्रों सी नख - उजियाली !
कितने छाले फटे पाँव के फूट फूट कर भर भर आते !

कहाँ कमल नालों सी बाहें,
कहाँ सजी फूलों की राहें,
काँटों की झाड़ी में उलझे कंकालों के तन दिखलाते !

भूखा तन मन, भूखा यौवन,
कहाँ मदिर मधु - स्वप्निल गायन,
गिरते जीवन के पतझर में तुम कैसे मधुमास मनाते !

विहाग

घाँय घाँय ज्वालायें जलतीं,
तरुणाई तापों में गलतीं,
झंझा के उठते झोंकों मे कैसी वीणा - तान सुनाते ?

कहाँ प्रणय-वन्दन की कड़ियाँ,
मुक्त-हास की मृदु फुलझड़ियाँ,
मरघट की इस चहल पहल में कौन स्वप्न के महल उठाते ?
कुसुम गान अब नहीं सुहाते !